यह पुस्तिका !

ग्यारह प्रतिमाओं का जैन श्रावकाचार—गृहस्थाचार में अपना विशिष्ट महत्त्व है। जीवन विकास के पथ पर अग्रसर साधनाशील, व्रती श्रावक के लिए ये प्रतिमाएं—ये सीढ़ियाँ—बड़ी प्रेरक, उद्बोधक और आलम्बरूपी हैं। प्रतिमाधारी श्रावक के प्रति समाज की गहन श्रद्धा इसलिए होती है कि वह स्व-पर कल्याण के पथ पर कदम रख चुका होता है। वह सम्यग्दृष्टि माना जाता है और इस तरह कविवर बनारसीदास के शब्दों में भगवान् जिनेन्द्र का लघुनन्दन होता है।

महात्माजी ने इन प्रतिमाओं के बारे में जो कुछ चिंतन किया है, वह इस लेख में प्रकट है। उन्होंने बताया है कि ये प्रतिमाएँ समाजोन्नति सोपान की सीढ़ियाँ—डंडे हैं। प्रतिमाधारी व्यक्ति केवल अपने में ही केन्द्रित नहीं होता, वह धीरे धीरे समूचे समाज का, देश का सेवक बन जाता है और उसमें इतना रम जाता है कि उसका अपना कुछ भी नहीं रह जाता—सारा समय, सारी शक्ति और सम्पूर्ण भावनाएँ वह समाज को समर्पित कर देता है और समाज में, समाज से समाज के लिए ही पाता है, लुटाता है। पाठक देखेंगे कि अब तक इन प्रतिमाओं के बारे में आम लोगों में तथा प्रतिमाधारियों में जो विचार और जो संस्कार गहरे पैठे हुए हैं, वे व्यक्ति को समाज से एकदम अलग अलग कर देते हैं और प्रतिमाधारी अपने को एक निराली, अजनबी दुनिया का, कुछ ऊँचा जीव समझने लगता है। यह धारणा, यह प्रतीति दूर होनी चाहिए और एक ऐसी व्यापक तथा उदात्त दृष्टि का विकास होना चाहिए, जिससे समाज ऊँचा उठ सके, प्रतिमाधारी भी नैतिक दृष्टि से ऊँचा उठ सके।

अपने धार्मिक उत्साह के दिनों में स्वयं महात्माजी भी सातवीं प्रतिमा के धारी श्रावक रह चुके हैं। लेकिन उन्होंने इन प्रतिमाओं का ग्रहण अपने ढंग से किया था और फिर इनको वे साधन ही मानते थे, साध्य नहीं, अतः इनसे ऊपर ही उठ गये थे।

पुस्तकांक १

समाजोन्नति का आधार

ग्यारह प्रतिमाएँ

[ग्यारह प्रतिमाओं की व्यापक व्याख्या]

महात्मा भगवानदीन

श्रीमती शान्तादेवी, धर्मपत्नी
श्री मूलचन्दजी बड़जाते, वर्धा
के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

अभय प्रकाशन-मन्दिर
रानघाट, वाराणसी

प्रकाशक विजयादेवी जैन,
संचालिका, अभय प्रकाशन-मन्दिर,
ए १०/७५ प्रह्लादघाट, वाराणसी
संस्करण पहला फरवरी १९६४
प्रतियाँ १०००
मुद्रक शंकर राम
शिव प्रेस, वाराणसी
मूल्य २० न पै

सम्पादक तथा संयोजक
जमनालाल जैन

●

यह शुभारम्भ

अभय प्रकाशन-मन्दिर की यह पहली भेंट पाठकों के हाथों देते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है। महात्मा भगवानदीनजी के स्वर्गवास को अब पन्द्रह महीने हो गये हैं। उनका कुछ विचार-प्रेरक साहित्य अप्रकाशित पड़ा है। हम लोग सोचते रहे कि अगर उनका साहित्य प्रकाशित किया जा सके तो समाज के लिए वह बड़ा उपयोगी व प्रेरणादायी होगा। एक तेजस्वी मनीषी के विचारों से हमारी युवा पीढ़ी वंचित रह जाय यह बात अपने आपमें चुभनेवाली है।

संयोग की बात कि हमारे मित्र और साथी श्री मूलचन्दजी बड़जाते, वर्धा की धर्मपत्नी सौ० शान्तादेवी ने प्रस्तुत पुस्तिका के प्रकाशन के लिए अपना आर्थिक सहयोग प्रदान किया और उनकी प्रेरणा पर यह शुभारंभ हुआ। उनका यह प्रथम और अनपेक्षित सहयोग पाकर हमें विश्वास हुआ है कि समाज के उदार सहयोग से महात्माजी की कुछ रचनाएँ हम प्रकाशित कर सकेंगे।

बड़े-बड़े और कीमती ग्रन्थों को पढ़ने का अब लोगों को न अवकाश है न दिलचस्पी। सब अपनी-अपनी समस्याओं में उलझे रहते हैं। छोटी-छोटी रचनाएँ पढ़ने में न वक्त का सवाल न कीमत का। रचना के छोटी-बड़ी होने से कुछ नहीं होता अगर विचार को गति मिले तो ढाई अक्षर ही बहुत काम के होते हैं। आशा है पाठक इस शुभारम्भ को पसन्द करेंगे और अपना सहयोगपूर्ण आशीर्वाद प्रदान करेंगे—यही पूज्य महात्माजी के प्रति यथार्थ श्रद्धांजलि होगी।

—विजयादेवी जैन

ग्यारह प्रतिमाएँ और समाजोन्नति

आदमी सामाजिक प्राणी है। जैसे बच्चा अकेला नहीं खेल सकता, वैसे ही आदमी अकेला नहीं रह सकता। जैसे छोटे-से-छोटा बच्चा अकेला नहीं खा सकता, वैसे ही आदमी अकेला नहीं खा सकता। बुरी सोहबत से उसका यह गुण खो गया हो, तो दूसरी बात है।

आदमी जब भी अपने हाथ से रोटी बनाता है, तो उसको अपने खाने के अच्छे बनने की तसल्ली उस वक्त तक नहीं होती, जब तक वह किसी दूसरे को अपना बनाया हुआ खाना न खिला दे। इससे यह सिद्ध होता है कि हर आदमी के अंदर से समाज-सेवा का सोता फूटता है।

मोह की कीचड़ में फँसे रहते भी उसे अपनेपन का ज्ञान होता है और यह ज्ञान कुछ देर भी बना रहे, तो फिर मुश्किल से उसका साथ छोड़ता है। और बहुत जल्दी ही समाज-सेवा की लगन उसमें पैदा कर देता है।

समाज-सेवा की लगन महान् व्रत है। यह वह सोपान है, जिस पर मनुष्य चढ़कर अपने साथियों को ऊँचा उठाता है, उनके दुख दूर करता है, उनको बुराइयों से बचाता है और हर तरह की उन्नति में लग जाता है। कोई तो ऊँचा उठ ही जाता है।

१ विश्वास-सीढ़ी

ऐसे आदमी में स्वाभिमान तो होता है, पर अभिमान बहुत कम होता है। अगर होता है तो वह उसे कम करने

की कोशिश करता है और गैरजरूरी अभिमान को उठाकर फेंक देता है।

समाज-सेवा की लगन में दत्तचित्त मनुष्य निडर और निःशंक होता है। वह अपने बल पर जीता और समाज से किसी तरह की अपेक्षा नही रखता।

समाज के बेजा बंधन उसके ढीले पड जाते हैं। मनुष्य मात्र उसका भाई बन जाता है। उसे किसीसे घृणा नही रह जाती। सबसे प्यार होने के कारण वह लोगो की बुराई करने से बच जाता है। दूसरो की बुराई सुनता भी नहीं है, देखता भी नही है। पर उनको बुराई से बचाने की कोशिश जरूर करता है।

जितने रूढ़ि-विचार होते हैं, उन सबका भय उसके सिर से निकल जाता है। ऐसा कोई उपदेश उस पर असर नही करता, जो उसे समाज-सेवा से विचलित कर सके। वह ऐसा भी कोई काम नही करता, जिससे समाज का माथा नीचा हो।

मनुष्य मात्र से उसे मित्रता हो जाती है। इसलिए वह किसीको गिरते हुए नही देख सकता। गिरे को उठाना उसका धर्म सा बन जाता है।

इस तरह समाज सेवा की लगन में डूबा आदमी उस सीढी के पहले डंडे पर कदम रख देता है, जो उसे एक दिन सब तरह समाज सेवक बनाकर रहेगी। और उसका अंग-अंग समाज सेवा की किरणें फकने लगेगा। उसके ससर्ग में आने से ही अनगिनत मनुष्यो का चरित्र निमाण होने लगेगा। इस पहली सीढी का आप चाह तो कोई नाम रख सकते हैं। उसे

आप विश्वास-सीढी कह सकते हैं प्रीति सीढी कह सकते हैं या और कोई नाम दे सकते हैं।

२ व्रत-सीढ़ी

समाज-सेवा के लिए सबसे जरूरी है स्वच्छन्दता को स्वतंत्रता का रूप देना। स्वच्छन्दता चाहे समाज-नाशक न हो, पर समाज का सगठन नहीं कर सकती। समाज-सगठन के लिए व्यक्ति को कुछ निछावर करना होगा, कुछ त्याग करना होगा और अपने पर काबू पाना होगा। जो अपनी देह का सगठन नही कर सकता, वह न समाज-सेवा कर सकता है, न समाज-सगठन। स्वच्छन्द से स्वतत्र होने के लिए उन गुणो को अपनाना पडता है, जो समाज-सगठन में उपयोगी हैं। वे हैं झूठ बोलने की लत छोडना, सत्य-व्यवहार को अपनाना, लोगो को सताना छोडना, अहिंसा को अपनाना। हिंसा से बिना बचे समाज-सगठन हो ही नही सकता। याद रहे, किसीकी जान लेना ही हिंसा नही है, उसको किसी तरह भी सताना हिंसा है और किसीको इतना सताना कि वह आत्म हत्या पर उतारू हो जाय, तो वह जान लेनेवाली हिंसा से भी बढकर हिंसा है।

सत्य और अहिंसा उसमें दूसरे गुण लाये बगैर रहते ही नहीं। वह बिना परिश्रम की ऐसी चोरी से बच जाता है, जो समाज-सगठन में बाधक होती है। उसको ब्रह्मचर्य का पाठ नही देना पडता। सत्य और अहिंसा समाज-सेवा की लगन के साथ मिलकर उसे पक्का ब्रह्मचारी बना देते हैं। उसे यह तो याद ही रखना चाहिए कि ब्रह्मचारी का यह अर्थ नहीं होता कि वह विवाह बधन में न बँधे या बाल-बच्चे पैदा न

करे। क्योंकि जो ऐसा नही करता याने जो विवाह नही करता, बच्चे पैदा नहीं करता वह समाज की पूरी सेवा नही करता और न कर सकता है। जो फलदार पेड फल देने से इनकार कर दे, वह भला पेड नही समझा जा सकता। ठीक है, उसके काठ का उपयोग हो सकता है और गठीला काठ जलाने के काम आ सकता है। पर यह कोई उपयोग नहीं है।

समाज-सेवा में लगा हुआ आदमी बहुत सादा रहने लगता है। अपनी जरूरतो को बहुत कम कर लेता है। क्योंकि इसके बिना उसे सुख ही नही मिलता। और जो खुद सुखी नही है, वह दूसरो को सुख कैसे बांट सकेगा? इसलिए समाजसेवी अपने-आप अपरिग्रही बन जाता है।

सत्य-अहिंसा के साथ सब व्रतो को अपना लेने के बाद आप चाहे तो यह कह सकते हैं कि वह समाजोन्नति के सोपान के दूसरे डंडे पर चढ़ गया, आप चाहे तो उसे व्रती नाम दे सकते हैं।

३ आत्म पड़ताल-सीढ़ी

वह समाज-सेवी ही नही है, जो अपने कामो पर नजर न डाले, जो अपना कोई प्रोग्राम न बनावे। हो सकता है ऐसे समाज सेवी मिलें, जो न अपना कार्यक्रम तैयार करते और न अपने काम पर नजर डालते है। एसे समाज सेवा समाज से आदर तो पा जायेंगे, पर उस अवस्था तक हर्गिज न पहुँच पायेंगे, जिसकी बात हम पहले कह चुके हैं, क्योंकि यह भी सोपान का एक डंडा है। इस पर पग रखे बगैर व्रतो की रक्षा नही हो सकती। व्रतो की रक्षा बगैर समाज-सेवा की लगन के प्रज्ज्वलित नही रह सकती।

व्रती समाज-सेवी जल्दी ही यह सीख जाता है कि वह सुबह अपनी चारपाई छोडने से पहले अपना कार्यक्रम तैयार कर लेता है, अपने चित्त को शुद्ध कर लेना है, अपनी इद्रियो और देह को विवेक के हाथ सौंप देता है। और तब ही वह किसी दूसरे काम में लगता है। ठीक इसी तरह सोने से पहले वह अपनी जाँच करता है, भूलो को भूल मानता है, आइन्दा न होने की तजवीज सोचता है। और फिर चित्त को शुद्ध करके इद्रियों और देह को विवेक से छुट्टी दिला देता है, सबको ढीला छोड देता है और आराम के साथ ऐसी नीद सोता है कि उसे करवट भी नही बदलनी पडती। यही है सोपान का तीसरा डडा। इसे कोई सध्योपासना नाम से पुकारता है, कोई सामायिक नाम देता है, पर हमें तो इसका नाम आत्म-पडताल अच्छा लगता है।

४ देहाधिकार-सीढ़ी

समाज-सेवी का स्वस्थ रहना अत्यावश्यक है। अगर कोई समाज-सेवी अस्वस्थ है, तो या तो वह जी से सेवा नही करता या किसी मान की खातिर जरूरत से ज्यादा सेवा कर देता है। शक्ति से कम सेवा अगर हानिकारक है तो शक्ति से ज्यादा सेवा सवा-हानिकारक है। क्योंकि वह स्वास्थ्य को बिगाड देती है और सेवा के क्षेत्र में अस्वस्थ सदा टोटे में रहता है।

व्रती आत्म-पडताल करनेवाला समाज-सेवी ऐसी भूलें नही कर सकता। उसे बिना-परिश्रम स्वाद पर अधिकार हो जाता है। वह खाने-पीने में असयमी नही रह जाता। वह खाने की इतनी ही फिकर रखता है, जितनी जीवित रहने

की। जिस देह से वह काम लेता है, उसको वह इतना ही आराम देता है, जितना तागेवाला घोडे को। घोडा तागा न खीचकर आराम पाता है, तागा खीचने के लिए बल पाता है। ठीक इसी तरह देह का इजन रेल के इजन की तरह सात दिन में एक दिन आराम चाहता है। रेल के इजन का आराम है उसे आग-पानी से बरी रखना, देह के इजन का आराम है उसे खाने पीने से बरी रखना। इससे देह को आराम मिलता है बल तो मिलता ही है। समाज सेवी खाना नही खाता, सिर्फ इसलिए कि स्वस्थ और बलवान रहने की यह एक विधि है। वह इस भोजन-त्याग की गिनती न त्याग में करता है, न तपस्या में। इसलिए इससे उसको कोई अभिमान नही होता। अभिमान तो समाज सेवा के मार्ग में कंटक है।

इस तरह समाज सेवी हर तरह स अपनी देह पर काबू रखते हुए सोपान के चौथे डडे पर चढ जाता है। आप चाह तो इसको कोई नाम दे सकते है। इसके लिए सबसे अच्छा नाम देहाधिकार रहेगा। कम से-कम इस दर्जे का नाम ऐसा नही रखना चाहिए, जिसमें उपवास सज्ञा शामिल हो। क्योकि वह साध्य नही, साधन है। साध्य है स्वस्थ देह इद्रियो पर अधिकार। वह अगर उपवास के बिना किसी और तरह हासिल कर लें, तो भी उस दर्जे का अधिकार माना जायगा। यहाँ यह तो याद ही रखना चाहिए कि ये सब नियम व्याकरण-बद्ध भाषा के नियमो की तरह नही है। इनमे समाज-सेवी अपनी जरूरत के अनुसार हेर-फेर भी कर सकता है। मूल उद्देश्य उसके सामने रहना चाहिए—समाज की निर्लेप सेवा की लगन को प्रज्ज्वलित रखना।

५ देह व्रती-सीढ़ी

समाज-सेवी जैसे-जैसे अपने काम में सलग्न होता जाता है, वैसे ही वैसे वह अपना बहुत-सा समय समाज के काम में लगाने की फिक्र करने लगता है। उसको इधर-उधर जाने के लिए हमेशा तैयार रहना पड़ता है। इसलिए उसको अपनी देह को यहा तक सधाना पड़ता है कि वह रूखा-सूखा खाकर भी स्वस्थ रह सके और समय-बे-समय देह रुचि के प्रतिकूल भोजन पाकर बगावत न कर बैठे। जगह-जगह के हवा-पानी के बदलने से स्वास्थ्य बिगड़ने की सभावना रहती है। इस बला से बचने के लिए उबला हुआ पानी पीना सबसे ज्यादा उपयोगी होता है। आजकल कीटाणु मारने के नये तरीके चल पड़े हैं। लाल दवा याने पाटाश के पानी से अगर फल धो लिये जायँ, तो हुजे का डर नही रहता। पर यह इस दवा को कहाँ बाँधे बाँधे फिरे ? और फिर समाज-सेवी यह भी पसद नही करता कि विदेशी या दूर देश की चीजें अपनायी जायें। उसम स्वदेश-प्रेम जाग ही जाता है।

समाज-सेवी का स्वदेश प्रेम विदेश द्रोह नही होता, विश्व-प्रेम और विश्व शाति की जड़ होता है। अगर दुनिया छोटे-छोटे घरो में अपनी जरूरतें पूरा करना सीख जाय, तो ससार के सारे झगड़े ही मिट जायँ। समाज-सेवी इसी ख्याल से अपनी जरूरता को पूरा करता है। पिसी हुई लवगो का जल पुटाश की जगह अच्छी तरह ले सकता है। उबलकर सब सब्जिया ही नही, सब चीजें कीटाणु-रहित हो जाती हैं।

मतलब यह कि व्रती समाज सेवी छोटे घेरे म अपनी जरूरतें पूरी करने लगता है और इस तरह सोपान के पाँचवें

डडे पर चढ जाता है। इसे आप देह-व्रती नाम दे सकते हैं।

६ समयाधिकारी-सीढ़ी

समाज-सेवा में लगकर समाज-सेवी की नजर चारो तरफ दौडने लगती है और उसकी सदा यह कोशिश रहती है कि उसके कारण दूसरो को कम से कम तकलीफ हो। इधर वह यह भी चाहता है कि ज्यादा से-ज्यादा समय समाज-सेवा के लिए निकाल सकें। फिर उसकी नजर उन प्राणियो पर भी जाती है, जो निशाचर नही हैं और मासाहारी भी नही है और जिनमें से कुछ की आदतें उससे मिलती-जुलती हैं, बनावट तक उससे मिलती-जुलती है। इसलिए वह इस कोशिश में लगता है कि जहाँ तक बने, दिन में कई बार तो न खाया जाय। एक बार खाने से ठीक काम चल सके तो सबसे अच्छा, नही तो दो बार। तीन वार से तो बचा ही जाय। रात का पूरा समय समाज-सेवा को सौंप दिया जाय। रात को सोना देह को स्वस्थ रखना है। अच्छी नीद समाज-सेवा में सहायक होती है। इसलिए वह नीद में कमी नही करता। पर लोगो के सुभीते के ख्याल से वह रात को कम-से कम खान-पीन के झझट से बच जाता है। इसमें भी उसे ज्यादा ख्याल रहता है उनका, जिनको उसकी वजह से कष्ट उठाना पडता है।

अब उसने हर तरह ऐसी तैयारी कर ली होती है कि जल्दी ही वह अपनी सहधर्मिणी को भी समाज-सेवा के काम म जुटा सके।

व्रती समाज सेवी को अब छठे दर्जे का अधिकारी समझा जा सकता है। उसे आप चाहे तो समयाधिकारी नाम दे सकत हैं। कही रात का न खानेवाला या रात्रि भोजन त्यागी नाम

न दे डाल। यहाँ हम फिर यह याद दिला देना चाहते हैं कि ये सब नियम ऐसे नहीं हैं जिनमें हेर-फेर न किया जा सके, क्योंकि ये नियम हम बना नहीं रहे। यह सिर्फ हम उस ओर संकेत कर रहे हैं कि समाज सेवी किस तरह आपको बांधता जाता है और स्वतंत्र से स्वतंत्रतर होता जाता है।

७ सेवा-समर्पित-सीढ़ी

इस तरह समाज सेवी सोपान के डंडों पर चढ़ता हुआ उस डंडे पर पहुँच जाता है जहां वह अपने को और ज्यादा गृहस्थी की बेड़ियों में जकड़े जाने से बचा ले। खुलासा यह कि वह अब औलाद पैदा करना भी बंद कर देता है और हर तरह ब्रह्मचारी बन जाता है। सुभीते के लिए वह अपनी सहधर्मिणी को अपने साथ रख सकता है, अगर वह भी उसी की तरह समाज सेवा में संलग्न होना चाहे और उन दर्जों को पूरा कर चुकी हो, जिनका जिक्र पहले हो चुका है।

समाज सेवा की राह पर इस क्रम से बढ़ता हुआ ब्रह्मचारी या इस तरह अपने पर अधिकार जमाता हुआ ब्रह्मचारी जब वह शक्ति पा लेता है कि उसके बहुत से काम वचन मात्र से हो जाते हैं। उसकी देखादेखी समाज के नवयुवक उसकी नकल करने लगते हैं और जी से समाज सेवा के काम में लग जाते हैं। आप चाहें तो इस दर्जे का नाम ब्रह्मचारी रख सकते हैं। पर ज्यादा अच्छा नाम रहेगा सेवा-समर्पित। ब्रह्मचारी शब्द न जाने क्या-क्या भावनाएँ अपने साथ जुटा चुका है और समाज न जाने क्या-क्या आशाएं ब्रह्मचारी नामधारियों से रखता है। इसलिए यह नाम तो अब इस्तेमाल से हट जाना चाहिए।

८ निर्द्वन्द्व-सीढ़ी

इस दर्जे पर पहुँचकर मनुष्य अपने ऊपर बहुत काबू पा जाता है और फिर यह देखकर कि तमाम पशु-पक्षी जो मनुष्य के दास नही हुए हैं, बड़े आराम से रहते हैं। वे न खेती करते हैं, न घर बनाकर रहते हैं और खाना पकाने के काम से तो बहुत आजाद हैं। सुखी तो खूब हैं ही। इसलिए वह धीरे-धीरे पके हुए खानो से बचना चाहता है। वह फल-फलाली पर ही रहना शुरू कर देता है। केवल दूध से भी उसका काम चल जाता है।

यहाँ यह तो याद ही रहे कि वह कीटाणुओ को मारने की क्रिया को कभी नही छोडता। क्योकि स्वास्थ्य के लिए यह बहुत जरूरी है।

ऐसा करने से वह खुद भी बहुत सी झझटो से बच जाता है। दूसरो को झझटो से बचा देता है। अब उसकी सहधर्मिणी भी उसकी सच्ची साथिन बन जाती है और सहधर्मिणी शब्द का जो अर्थ है, उसे सिद्ध कर देती है। इस दर्जे के आदमी को आप निर्द्वन्द्व नाम दे सकते हैं। कही ऐसा नाम न दे डालना जैसे पक्वान-त्यागी या आरभ-त्यागी, क्योकि वह तो जरूरत पडने पर पकवान बनाने का काम भी अपने हाथ मे ले सकता है और गृहस्थ के सभी काम खुशी से कर सकता है और समय-बे समय करता भी रहता है।

९ निर्ग्रन्थ-सीढ़ी

निर्द्वन्द्व होकर वह स्वच्छद नही बनता, हर तरह स्वाधीन बनता है, पराधीनता की जाँच करता रहता है। हर तरह की पराधीनता से बचना चाहता है।

वह अच्छी तरह जानता है कि [illegible]
वचन है, जिसका उसका नाता नहीं है [illegible]
इतना ही काटना चाहिए, जितने [illegible]

निर्द्वन्द आदमी समाज-सेवी है [illegible]
ऐसे कामों में सलाह देने से इनकार [illegible]
से कोई संबंध नहीं रखता। [illegible]
गया होता है कि हर कोई आदमी [illegible]
चाहता है, उसकी राय चाहता है। [illegible]
की सलाह देना बंद कर देता है। [illegible]
सेवा में अड़चन डालती है। [illegible]
बड़ा ध्यान रखता है कि वह [illegible]
बाँधता नहीं। जैसे अगर कोई [illegible]
होने का निमंत्रण देने आवे, तो [illegible]
अपना सुभीता देखेगा। यही बात [illegible]
खाने तक का निमंत्रण भी स्वीकार [illegible]
तरह उसे बड़ा बँध जाने की [illegible]
आदमी अपने सिर क्यों मोल [illegible]
आज़ाद रखे। और क्यों न वह [illegible]
कौन सा समय कहाँ लगाना ठीक [illegible]

हर आदमी समझ [illegible]
समाज-सेवी जब समाज का [illegible]
जितने आदर का अधिकारी है [illegible]
सम्मान से भी ज़्यादा प्यारा है [illegible]
अगर वह अपने को आज़ाद [illegible]
काम ठीक-ठाक कर ही न सके [illegible]
है। न अपने को बाँधता और [illegible]

आदमी को आप निद्वन्द्व नाम दे सकते हैं। कही ऐसा नाम न दे डालिये जैसे अनुमति त्यागी, क्योकि यह बहुत सकुचित नाम है और साधन का प्रतीक है, न कि साध्य का।

१० इच्छा जयी

समाज-सेवी समाज शासक बनने की बात कभी अपने मन में नही आने देता। समाज तो अपने आप उससे शासित होने लगता है। ऐसा यो होता है कि समाज सेवी अपने पर बडा कडा शासन रखता है और समाज शासन का यही मूल मन्त्र है।

समाज सेवी हर समय अपनी जाँच करता रहता है। वह यह हर्गिज नही चाहता कि उसका मन उसके ऊपर अपना रोब जमाये, मन हमेशा उसके काबू मे रहता है।

मन का घोडा बहुत मुँहजोर होता है। समाज सेवी वानप्रस्थी होने पर भी हर तरह गृहस्थी होता है। मन का घोडा उसे यो नही गिरा सकता, जब कि वह ऋषियो तक को अपनी पीठ पर से गिरा देता है।

समाज सेवी को इस बात का पता होता है, इसलिए वह और आगे बढता है। अगर उसका मन किसी बात को चाहे तो वह उसकी नही सुनेगा। उसका मन अगर सर्दी-गर्मी से भागे तो वह उसे नही भागने देगा या और किसी तकलीफ से बचना चाहे तो वह उसकी नही सुनेगा। खाने-पीने, ओढने-पहनने और रहने-सहने के मामले मे तो वह उसका कहना कभी मानता ही नही। आखिर तो समाज-[illegible] [illegible]
आदमी है, समाज का ही खाता, समाज का [illegible] और
समाज के ही घरो म रहता है। [illegible]
मिल जाने की सभावना बनी [illegible]
स्वभाव से वाकिफ होता है, [illegible]

है, उसके रहन-सहन के ढग को जानता है। इसलिए पहले से ही वह उसको रुचि के अनुसार इतजाम कर रखता है। अब अगर समाज सेवी अपने को ऐसी छूट दे दे कि जो उसके लिए तैयारियाँ की गयी हो, उन्हे वह स्वीकार कर लिया कर, तब तो मन उस पर सवार हो बैठे और जल्दी ही ऐशो-आराम के गढे में ढकेल दिया जाय। इसलिए वह और भी अपने को बाँधता है और अपने लिए किये गये इतजामो को रद्द कर देता है। जहाँ उसके लिए कोई इतजाम न हुआ हो, वहा वह खायगा, वही से जरूरत होगी तो पहनने के लिए ले लेगा और जैसी जगह मिल जायगी, गुजारा कर लेगा।

ऐसे आदमी को आप इच्छा-जयी कह सकते हैं, इच्छा-जीत भी कह सकते हैं। इसके लिए क्षुल्लक बहुत छोटा नाम है, व्यापक नही है और फिर साध्य तो है ही नही।

११ स्वाधीन सीढ़ी

जिसने अपने मन को इतना मार लिया हो, अब उसमें यह स्वाभाविक इच्छा पैदा होनी चाहिए कि न वह दर्जी का दास रहे, न चमकार का दास रहे, न राज-मेनार का दास रहे और जहाँ तक बने किसीका दास न रहे। अदालतो और सरकार की दासता तो वह पहले ही छोड चुका होता है। अब तो वह दासता का धब्बा अपनी चादर से बिलकुल मिटा दना चाहता है। और सच्चे अर्थों म सेवक बना रहना चाहता है।

वह पागलपन नही करता। धीरे-धीरे बढता है। अपनी ताकत को जाचता हुआ बढता है। इसलिए वह ऐसा नही करता कि जुलाहे की दासता से बचने लिए एकदम नग्न हो जाय। इसलिए सिर्फ वह दर्जी की दासता से बचता है। सिफ सर्दी-गर्मी मिटाने की सोचता है, पर उस पर भी काबू

पाने का ध्यान बनाये रखता है। अब वह बे सिले कपडो पर आ जाता है और इस तरह दर्जी की और भी ज्यादा सेवा कर सकता है।

यह याद रहे कि जितने दर्जे हम गिना आये हैं, उनमें से गुजरे बिना अगर कोई कछा बाँधकर या चादर ओढ़कर रहने लगेगा, तो वह हँसी का पात्र बनेगा और उन कपडो की वजह से धोखे मे आकर समाज उसे आदर देने लगेगा। तो, ऐसा आदमी समाज के पतन मे सहायक होगा, न कि उत्थान में।

ऐसे आदमी को आप स्वाधीन नाम से पुकार सकते हैं।

ऐसा स्वाधीन मनुष्य धीरे-धीरे अपने वस्त्र कम करने लगता है और जरूरत पडे तो नग्न रहने के लिए तैयार रहता है और यही है आत्माधीन होने का मार्ग और समाज पर पूर्ण रूप से अर्पित हो जाने की रीति और समाज को उस ऊँचाई तक पहुँचा देने का अचूक क्रम जहाँ पहुचकर फिर वह किसीकी दासता स्वीकार नही कर सकता।

याद रखो, जो देह का दास है, इन्द्रियों का दास है, मन का दास है, वह आदमी तो आदमी, चौपायों का भी दास हो सकता है। जिसे प्रकृति से पाये देह-रूपी राज्य पर शासन करना नही आता, वह समाज पर शासन करने की बात सोचे, तो उससे बडा मूर्ख कौन हो सकता है?

फारसी का एक शेर है जो सेवा करता है वह सेव्य बन जाता है। जो सेव्य बनना चाहता है वह मिट्टी में मिल जाता है।

अपने को सम्हालो, समाज अपने-आप सम्हल जायगा, अपने को सुधारो समाज सुधर जायगा।

दुर्भाग्य से ये प्रतिमाएँ समाज में खान-पान, व्रत-सामायिक, चादर-लँगोट की दिखावटी या बाहरी साधन-सामग्री भर रह गयी हैं। यही कारण है कि प्रतिमाधारी आज स्वयं एक समस्या बन गये हैं। वे स्वयं नहीं जानते कि उनका समाज के प्रति क्या उत्तरदायित्व है और ये प्रतिमाएँ क्यों धारण की जाती हैं। अगर समझ-बूझकर प्रतिमाएँ धारण की जायँ—एक-एक सीढ़ी चढ़ा जाय, तो ऐसे व्रती साधकों की एक ऐसी सेना तैयार हो सकती है, जो देखते देखते देश की काया पलट सकती है।

भारत जैसे विशाल देश में सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र में लाखों सेवक हैं—रचनात्मक कार्यकर्ता हैं। सर्वोदय-कार्यकर्ता भी हजारों हैं। इन सबके लिए भी यह पुस्तिका बड़े काम की साबित हो सकती है। सेवक का कार्यक्षेत्र चाहे जो हो, वह कहीं रहता हो, इन सीढ़ियों पर चढ़कर वह देश को नीतिमान्, अहिंसक, प्रामाणिक बना सकता है—इसमें शक नहीं।

समाज के त्यागी-मुनियों को भी इस पुस्तक से पर्याप्त राह मिल सकती है। जब तक वे अपने संकीर्ण घेरे से बाहर नहीं निकलेंगे और समाज की भलाई में सीधा हाथ नहीं बँटायेंगे, तब तक आत्म कल्याण के नाम पर दम्भ और ढोंग ही पनपता रह सकता है और आज यही हो रहा है।

यथासमय महात्माओं के ऐसे तेजस्वी और स्वतन्त्र विचारों की पुस्तिकाएँ अपने पाठकों को हम दे सकेंगे, ऐसी आशा है।

समाजोन्नति का आधार

ग्यारह प्रतिमाएँ

महात्मा भगवानदीन

अभय प्रकाशन मन्दिर
राजघाट, वाराणसी

दर्सनविसुद्धकारी बारह विरतधारी,
सामाइकचारी पवप्रोषधविधि वहै।
सचितको परहारी दिवा अपरस नारी,
आठों जाम ब्रह्मचारी निरारंभी ह्वै रहै ॥
पापपरिग्रह छंडै, पापको न शिक्षा मंडै,
कोऊ यावे निमित्त करै सो वस्तु न गहै।
ऐते देसव्रत के धरैया समकिती जीव,
ग्यारह प्रतिमा तिन्हैं भगवन्तजी कहै ॥

× × ×

संजम अंस जग्यौ जहाँ, भोग अरुचि परिनाम।
उदै प्रतिग्याको भयो, प्रतिमा ताको नाम ॥

—महाकवि बनारसीदास